ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 33-36
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

महाभारत में राजशास्त्र का स्वरूप

राकेश मिश्रा

शोध अध्येता–प्राचीन इतिहास विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, (उ0प्र0),भारत

Received- 04 .09. 2018, Revised- 11 .09. 2018, Accepted - 15-09-2018 E-mail:rm8551481@gmail.com

सारांश– *समाज तथा धर्म की गहन मीमांसा की भाँति महाभारत में राजनीतिक तत्वों का विमर्ष भी बहुल और गूढ़ात्मक है। धर्मशास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करते हुए राजनीतिक तथ्यों का विशुद्ध लौकिक चिन्तन इसकी अपनी विशेषता है। वस्तुतः राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त महाभारतीय राजनीति–विचारकों ने एक अपेक्षित सीमा तक धर्मशास्त्रीय तत्वों का अर्थशास्त्रीय अथवा राजनीतिक दृटिकोण से विश्लेषण किया। इस सामंजस्य–प्रिय प्रवृत्तिका स्वाभाविक निष्कर्ष यह हुआ कि नैतिकता राजनीति से असम्बद्ध न रही। राजधर्म अथवा राजनीति में नैतिकता को स्थान मिला। किन्तु साथ ही साथ राजनीति के व्यावहारिक क्षेत्र में उसे सर्वोच्चता नहीं मिली।*

मुख्य शब्दः अपेक्षित, दान–परित्याग, नतमस्तक, तर्क–वितर्क, सर्वतोमुखी, सावयनी, मोहातुर, क्षात्र धर्म, संयोजन

राजधर्म सभी धर्मों में श्रेष्ठ कहा गया है। उल्लिखित है कि तीनों वर्णों के उपधर्मों सहित जो अन्यान्य धर्म हैं, वे राजधर्म से ही सुरक्षित रह सकते हैं। क्षात्रधर्म में सभी धर्मो का समावेश हो जाता है।1 धर्म, अर्थ तथा काम ही नहीं, अपितु मोक्ष–धर्म का साधन भी राज–धर्म के द्वारा ही सम्भव समझा जाता है।2 राज–धर्म सम्पूर्ण जीव–जगत् का आश्रय है।3 अतः राज–धर्म से प्राणिमात्र की संरक्षा की अपेक्षा की जाती थी। व्यक्ति तथा समाज के सर्वोत्कृष्ट विकास के लिए धर्म, अर्थ तथा काम के साधन करने की परिस्थितियों की संयोजना राज–धर्म का दायित्व था। इस व्यापक किन्तु विषम कार्य के सम्पादन में राज–धर्म इसीलिए समर्थ है कि उसका स्वरूप छल–रहित तथा आत्मा के साक्षित्व से युक्त है।4 चारों वर्णों पर दया करने वाला धर्मात्मा एवं सत्यवादी राजा ही प्रजा को प्रसन्न कर सकता है।5 अतः सत्य, न्याय, निष्काम सेवा तथा दया आदि राज–धर्म के प्रमुख गुण माने गये। इसके स्थायित्व एवं सार्वभौमिकता का आधार नैतिकता थी। किन्तु नैतिकता का यह आधाररूप राजनीति के व्याववहारिक कार्यों में बाधक नहीं था। एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि ब्राह्मण भी, जो संसार में सर्वश्रेष्ठ तथा दण्ड–बाह्य है6, यदि धर्म–नाशक हो तो उसे मारने में भय नहीं करना चाहिए। वास्तव में क्रोध ही उनके क्रोध से टक्कर ले सकता है।7 राजनीतिक ध्येय की पूर्ति नैतिकवाद के आदर्श में सम्भव नहीं, यह शास्त्रमर्मज्ञों को ज्ञात था। पृथ्वी पर सभी कार्यों में क्षात्रधर्म नितान्त पाप–पूर्ण कर्म है, ऐसा युधिष्ठिर का कथन है, किन्तु राज–धर्म के औचित्य को सिद्ध करते हुए वह कहते हैं कि राजा बहुत से अच्छे कार्य भी करता है। दान–परित्याग, बलिदान, दुष्टों को दण्ड देना तथा सज्जनों को पुरस्कृत करना आदि राजा के सत्कर्म राज–धर्म की कटुता को सन्तुलित कर देते हैं। इस प्रकार राजनीति में अनैतिक तत्वों की समाविष्टि अनिवार्य तथा स्वीकृत है। घोषाल की यह उक्ति सही है कि राज–धर्म अपनी अत्याज्य कटुता के कारण नैतिकता के उच्चतम स्तर की समकक्षी नहीं हो सकती।8 राज–धर्म को महाभारत में राजशास्त्र, राजनीति, राजोपनिषद् तथा दण्डनीति प्रभृति कई संज्ञाएँ दी गई हैं। इनमें दण्डनीति का प्रयोग विशेष हुआ है।9 राजा दण्डधर था और दण्ड का सम्यक् प्रयोग ही दण्डनीति थी। दण्डनीति ही राजधर्म का आदर्श थी। राजनीति में दण्ड की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती थी, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं हैकि राजनीति तथा आचार–सिद्धान्त में कोई सम्बन्ध नहीं माना गया। महाभारत में तो दण्ड को व्यवहार कहा गया है10 और धर्म का दूसरा नाम व्यवहार है। लोक में सतत सावधान रहने वाले पुरूष के धर्म का लोप न हो इसीलिए दण्ड की आवश्यकता है और यही उस व्यवहार का व्यवहारत्व है।11 धर्म का न्याय–संगत रूपदण्ड है। दण्ड और धर्म के इस एकीकरण की व्याख्या में यह स्पष्ट उद्देश्य है कि राजनीति में नैतिकता का अनिवार्य स्थान सामान्य–धर्म एवं वर्णाश्रम–धर्म के पालन का बाधक न हो सकें; त्रिवर्ण की प्राप्ति के द्वारा व्यक्ति जीवन के विविध पक्षों का समन्वित विकास कर सकें। कदाचित इसी उद्देश्य से यह कहा गया है कि समस्त संसार को मर्यादा के भीतर रखने के लिए राज–धर्म आवश्यक है।12

राज्य की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त प्राचीन भारतीय शास्त्रज्ञों को मान्य न था। महाभारत में उल्लिखित राजनीतिविज्ञों को भी स्यात् इसमें विश्वास न था। किन्तु राज–तन्त्र में राज्य के स्थायित्व के लिए दैवी तथ्य किस सीमा तक क्रिया–शील हो सकते हैं, इसका ज्ञान उन्हें था। अतः उन्होंने राज्य की उत्पत्ति के दैवी उपकरणों का प्रासंगिक आश्रय ही लिया। युधिष्ठिर ने भीष्म से कहा कि इस सारे जगत का जो एक ही व्यक्ति को देवता स्वरूप मानकर नतमस्तक हो जाता है कोई स्वल्प कारण नहीं हो सकता13; कृपा कर मुझे बतलाइये कि लोक में यह जो राजा शब्द

अनुरूपी लेखक

चला आ रहा है उसकी उत्पत्ति कैसे हुई?14 उत्तर में भीष्म ने कहा कि, पहले न कोई राज्य था, न राजा; न दण्ड था, न कोई दण्ड देने वाला। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करती थी। किन्तु इस धर्म–व्यवस्था का शीघ्र ही ह्रास हो गया और कर्तव्य–च्युत मोहातुर व्यक्तियों का समाज अव्यवस्था की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। देव–गण ने ब्रह्मा के पास जा कर उन्हें इस स्थिति से अवगत कराया।15 ब्रह्मा जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए उनके कल्याण की विधि बताई। सर्व–प्रथमउन्होंने नीति–शास्त्र की रचना की। इस शास्त्र में त्रिवर्ग के साधन के आधार पर व्यक्ति, समाज तथा राज्य तीनों के प्रकर्ष की विधियाँ थीं। इसमें राजा के अधिकार और कर्तव्य, राज्य का स्वरूप एवं उनकी आन्तरिक एवं बाह्य नीति से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का निरूपण था। तत्पश्चात् भगवान नारायण ने भली भाँति विचार कर मानस–पुत्र विरजा की सृष्टि की।16 यहाँ मानस–पुत्र शब्द ब्रह्म के पुत्र का वाचक नहीं है, प्रत्युत वह मानस–ऊहापोह एवं बुद्धिबल के द्वारा सर्वथा उपयुक्त व्यक्ति का चयन है। ब्रह्माजी ने मनुष्यों में से ही किसी योग्य व्यक्ति का नाम बतलाने को देवगण से कहा था।17 विरजा के बाद राज–पद का सब से कुशल ओर धर्मज्ञ अधिकारी पृथु शासक हुआ। वह बहुश्रुत, नीति–शास्त्र का ज्ञाता और मर्मज्ञ था।18 उसने प्रिय और अप्रिय का विचार छोड़ कर काम, क्रोध, लोभ तथा मान को त्याग कर प्रजा पर सम–भाव से शासन किया।19 उसके राज्य में किसी को बुढ़ापा, दुर्भिक्ष तथा आधि–व्याधि का कष्ट नहीं था; चोरों आदि से आपस में कोई भय नहीं था।20

उपर्युक्त उल्लेखों में स्पष्ट है कि मानव–जीवन की संरक्षा तथा विकास, सामाजिक सुव्यवस्था और स्थिरता के लिए राज्य–संस्था अनिवार्य है। सबसे महत्पूर्ण राजनीतिक तथ्य इन उक्तियों में यह है कि किसी राज्य का एक विधान हो जिसमें शासन–विधि, प्रशासनिक अंग एवं राज्य के उद्देश्यों का विवरण रहे। कदाचित् ब्रह्मा के द्वारा नीतिशास्त्र के निर्माण का यही आशय था। राज–पद आनुवंशिक होते हुए भी राजा राज्य के सात अंगों में से एक था। जिसमें शासन की उपर्युक्त सभी क्षमताएँ हों वही राजा था। समस्त प्रजाओं का रंजन करने के कारण वह राजा था।21 इसी कारण एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि समस्त नरेशों में राजा पृथु को ही यह सारा जगत् देवता के मान शीश झुकाता है।22 राज के दैवी गुणों के कारण ही प्रजा उसके अधीन रहती है।23 प्रजा की इस अधीनता को न्यायोचित बतलाते हुए कहा गया है कि राजा को एक मनुष्यमात्र समझाकर उसकी अवलेहना नहीं करना चाहिए; मनुष्यरूप में वह महान देवता है।24 समयानुसार वह अग्नि, सूर्य, मृत्यु, कुबेर तथा यमराज का रूप धारण करता है।25 ये देव–गण निग्रह तथा अनुग्रह द्वारा सम्पादित राज्य के विभिन्न कार्यों (शक्तियों) के प्रतीक हैं।26 इसके द्वारा राजा को देवता बना देने का प्रयास नहीं था। राजा में असामान्य मानवीय गुणों एवं क्षमताओं की उपस्थिति होने से ही उसे देवता की संज्ञा दी गई थी। स्पष्ट है कि महाभारत में राज–पद की उत्पत्ति एवं राजत्व के स्वरूप की मानवीय चिन्तन–शैली है। उसमें राज्य की उत्पत्ति, शासन का दैवी अधिकार तथा राज–निरंकुशता आदि, जो दैवी सिद्धान्त के मूल तत्व हैं, महाभारत में किसी भी स्थल पर मीमांसित नहीं है। राज्य में दैवी भावना का आरोपण अवश्य किया गया था। राज्य के प्रति एक पुनीत आस्था थी। राजा के कर्तव्य का जन–सेवा एवं मानव–हित से तादात्म्य ही राजा के देवत्व का उत्तरदायी कारण बना। राज–सत्ता निरंकुश न थी। अन्य धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ ही राजा को ब्राह्मण को अदण्डनीयता एवं धर्म में विश्रुत ब्रह्मर्षियों के द्वारा निर्देशित विधि–विधान के पालन का वचन देना पड़ा था।27 अतः इन परिस्थितियों में राज्य की उत्पत्ति के दैवी–सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया।

राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त का महाभारत में कहीं स्पष्ट विवरण नहीं है। किन्तु सप्तांग राज्य की अवधारणा के प्रतिपादन से यह अवश्य स्पष्ट है कि राजनीति–वेत्ता राज्य को एक स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक संस्था मानते थे। आवश्यकता की भित्ति पर उसका क्रमशः स्वतः निर्माण हुआ। मानवीय संस्था में मानवीय गुणों का आरोपण कर राज्य के सावयवी स्वरूप की अभिव्यक्ति भी निष्प्रयोजन नहीं थी। कहा गया है कि राजा प्रजाओं का प्रथम अथवा प्रधान शरीर है। प्रजा भी राजा का अनुपम शरीर है। न राजा के बिना देश एवं उसके निवासी रह सकते हैं और न देश तथा देशवासियों के बिना राजा।28 इस उल्लेख का यही सूक्ष्मार्थ है कि राजा (शासन) प्रजा (शासित) एवं देश (भू–खण्ड) समन्वित रूप से एक कायिक रचना हैं। अवच्छिन्न होने पर राजनीति की दृष्टि से उनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। राज्य तथा व्यक्ति अन्योन्याश्रित हैं, किन्तु जैसे जीवित सूक्ष्म पदार्थों से निर्मित शरीर उन पदार्थों से भिन्न एक भिन्न व्यक्तित्व है, वैसे ही व्यक्तियों द्वारा निर्मित राज्य का अपने निर्माण–तत्वों से अलग एक स्वरूप है, जिससे प्रेरणा एवं मानव–जीवन के समान महत् उद्देश्य है। उसी स्थल पर आगे लिखा है कि राजा प्रजा की गुरूतम हृदय–गति, प्रतिष्ठा और उत्तम सुख है।29 अतः राज्य जीवन की चेतना एवं एक विशिष्ट लक्ष्य से अनुप्राणित था। भण्डारकर का कथन है कि हिन्दू शास्त्रकारों द्वारा राज्य एक सजीव आध्यात्मिक सावयव माना जाता था, राजा अथवा स्वामी उसकी आत्मा थी।30 इस सिद्धान्त के गहनतम् तर्क–वितर्क तक हिन्दू विचारक नहीं गये क्योंकि तब वह पूर्णतः दार्शनिक तथ्य बन

व्यावहारिक अथवा राज–कौशल की दृष्टि से असाध्य हो जाता। हिन्दू शास्त्रों का उद्देश्य तो ऐतिहासिक आधार पर राज्य के क्रमिक विकास ओर उसके एक मानवीय संस्था के रूप की व्याख्या करा था। दार्शनिक अभिप्राय में राज्य को एक सजीव आध्यात्मिक रचना स्वीकार करने से यही बोधित होता है कि राज्य का उद्देश्य नैतिक था। धर्म, अर्थ तथा काम के साधनों का विकास कर प्रजा की सर्वतोमुखी उन्नति को साध्य करना राज्य का दायित्व था। राज्य एवं प्रजा अपने आंगिक सम्बन्ध में एक दूसरे के हित–पूरक थे।

अन्य ग्रन्थों की भाँति महाभारत में भी राज्य के सात अंगों का उल्लेख व्यावहारिक दृष्टि से किया गया है। कहा गया है कि राजा का अपना शरीर, मंन्त्री, कोष, दण्ड (सेना), मित्र राष्ट्र और नगर ये राज्य के सात अंग हैं।31 राज्य की सावयवी अवधारणा में प्राचीन भारतीय राजनीतिज्ञों के विश्वास को यह उक्ति और अधिक पुष्ट कर देती है। ये विभिन्न अंग राज्य के निर्माण–तत्त्व नहीं, प्रत्युत् आवश्यक अंग हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध आवयवी हैं राजा को इन सातों की अवश्य रक्षा करनी चाहिए।32 राज्य के ह्रास, वृद्धि, उन्नति तथा अन्तर्राज्य सम्बन्धों की सफलता इन्हीं की संरक्षा पर आश्रित है।33 अर्थशास्त्र की भाँति महाभारत में भी इन अंगों के अन्तर्निर्भरता तथा आवश्यकता की दृष्टि से समानता का प्रतिपादन होते हुए भी इसमें इन अंगों के एक स्तरीय महत्व की विवेचना नहीं की गयी है। कदाचित् कौटिल्य राज्य–पक्ष को अधिक पुष्ट करना चाहता था,34 किन्तु महाभारत के विचारकों ने जन–तत्व तथा राज–तत्व दोनों के गौरव को स्वीकार करते हुए सभी अंगों की समान महत्ता पर बल दिया हैं महत्ता समान होते हुए भी राजा की विशिष्ट स्थिति की स्वीकृति तो की ही गई हैं। निःसन्देह यह स्थिति अधिकार–परिवर्तन के लिए नहीं, कर्तव्यों के दायित्व को पूरा करने के लिए थी।

इस सप्तांग सिद्धान्त में राज्य की सावयवी अवधारणा का एक प्रतीकात्मक विश्लेषणतो है ही, राज्य के मूल तत्वों का भी निर्देशन हैं सातों अंगों से युक्त राज्य का ह्रास अथवा वृद्धि होती है। राज्य अन्य राज्यों से सन्धि–विग्रह करने में समर्थ है,35 यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि संप्रभु राज्य के ये मूल तत्व हैं। पाश्चात्य राजनीति–विचारकों के अनुसार राज्य के चार मूल तत्व माने गये हैं – जनसंख्या, भूखण्ड, तन्त्र (शासन), और ब्राह्य नियन्त्रण से मुक्ति अथवा प्रभुता।36 उपर्युक्त सातों अंगों में राष्ट्र तथा नगर भूखण्ड तथा जनसंख्या के द्योतक हैं। राजा तथा मन्त्रिगण शासन–तन्त्र के लिए प्रयुक्त हैं। राज्य का चौथा तत्व प्रभुता है। प्रभुता राज्य की वह सामुहिक इच्छा है जिसका पालन विधि के रूप में बाध यरूप से होता है। अरस्तू इस राज्य की सवोच्च शक्ति कहता है,37 और आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक विलोची इसे परम–शक्ति मानता है।38 प्रभूता की परिभाषा के इस वैधानिक सिद्धान्त को प्राचीन भारतीय युग के लिए अभिचिन्तित कर सकना सम्भव न था जब राज्य–तन्त्र का ही प्रचलन था और विधि का स्त्रोत स्वयं राज्य न था पर राज्य–संप्रभुता राज्य के जीवन के लिए अनिवार्य समझी जाती थी। यह राज्यांगों में 'मित्र' तत्व से प्रमाणित है। संप्रभु राज्य ही सन्धि–विग्रह आदि करने में समर्थ है। दण्ड (सेना) तथा कोष निःसन्देह शासन–तन्त्र के ही अंग एवं आधार समझे जायेंगे। इस प्रकार महाभारत के अनुसार राज्य की उत्पत्ति क्रमिक विकास का परिणाम था। राज्य एक स्वाभाविक एवं मानवीय संस्था के रूप में स्वीकृत था। उसका स्वरूप सावयवी था; राज्य और व्यक्ति दोनों पर राज्य के उद्देश्य की पूर्ति का समान दायित्व था। राज–सत्ता एवं जनसहयोग की अनिवार्यता में प्रजा–हित की प्रधानता का सिद्धान्त स्वीकृत किया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महा0, शा0 64.21.
2. वही, 46.4.
3. वही, 56.3.
4. वही, 64.5.
5. वही, 56.36.
6. वही, 56.30.
7. महा0, शा0 56.30.
8. घोषाल, हिस्ट्री आव इण्डियन पोलिटिकल आइडियाज, पृ0 192.
9. महा0, शा0 15.29; 56.3; 58.1–3; आश्रम0 36.22.
10. वही, 121.8.
11. वही, 9.

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

12. वही, 56.5.
13. महा0, शा0 (प्रा0सं0) 56.12.
14. वही, 5.
15. वही, 93.
16. वही, 94.
17. वही, 93.
18. वही, 104.
19. वही, 110.
20. वही, 124–125.
21. महा0, शा0 127.
22. वही, 130.
23. वही, 132–134.
24. वही, 68.40.
25. वही, 41.
26. वही, 42–47.
27. वही, 59.108.
28. महा0, शा0 68.8, 16.
29. वही, 68.59.
30. अंजारिया, नेचन एसण्ड ग्राउन्ड्स आव पोलिटिकल आब्लीगेशन, पृ0 121.
31. महा0, शा0 69.62–63.
32. वही, पृ0 63.
33. वही, 59.51–52.
34. वही, पृ0 52.
35. महा0, शा0 59.51.
36. गार्नर, पोलिटिकल साइन्स एण्ड गवर्नमेन्ट, पृ0 53.
37. अरस्तू, पालिटिकल, खण्ड, अध्याय 7, पृ0 24–26.
38. गार्नर, पूर्वो0 पृ0 156

*****